मज़हबी तअस्सुब

भाग µ२

अकाल पुरुष ने इन्सान को अपने स्वरूप में रचा है ।

इन्सान के अन्दर जो आत्मा है, वह अकाल पुरुष की ही ज्योति या उसका ही प्रकाश है । पंच भौतिक शरीर को जीवन देने वाली यह 'ज्योति' ही है, जिसे उस सृजनहार ने स्वयं इस शरीर में रखा है —

ए सरीरा मेरिआ हरि तुम महि जोति रखी
ता तू जग महि आइआ ।। (पृ. 921)

फिर गुरबाणी में यह ताकीद की है कि हे मन, तू अपनी मूल ज्योति को पहचान —

मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु ।। (पृ. 441)

जब हमारे अंदर अकाल पुरुष की ज्योति बस रही है, तो फिर 'ज्योति स्वरूप' के, समस्त दिव्य गुण भी, इन्सानी आत्मा में होने अनिवार्य हैं । परन्तु यदि ऐसा दिखायी नहीं देता, तो इसका क्या कारण है ?

मायिकी भ्रम-भुलाव में, अहम् के अधीन, इन्सान के 'ज्योति स्वरूप' मन पर 'माया' की कालिख चढ़ गयी है । यह कालिख या मैल, मन पर, केवल इस जन्म में ही नहीं, अपितु पूर्व जन्मों से चली आई है।

जनम जनम की इसु मन कउ मलु लागी काला होआ सिआहु ।।
(पृ. 651)

माया के भ्रम-भुलाव के अंधकार में, हम अपने 'ज्योति-स्वरूप' 'वास्तविकता' या **'उत्तराधिकार' को भूल गये है** जिस कारण हम अहम् तथा मैं-मेरी की भावना में प्रवृत्त हो गये हैं।

लिव छुड़की लगी त्रिसना माइआ अमरु वरताइआ ।। (पृ. 921)

'अहम्'— मैं-मेरी की अज्ञानता में, हम प्रवृत्त होकर सोचते तथा कर्म करते हैं तथा परिणाम भोगते हैं।

जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु ।। (पृ. 134)

जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना ।। (पृ. 433)

हम अपने **पापों से बचने के लिए** तथा आत्मिक जरूरतों की **पूर्ति के लिए,** कोई-न-कोई धर्म या **'मज़हब' धारण करते हैं।**

अहम् तथा मैं-मेरी वाली वृत्ति से, इन्सान अपने-अपने ख्यालों, धारणाओं, धर्म या मज़हब को **विशेषता देता है,** तथा उनकी बढ़ाई करता है, परन्तु **अन्य लोगों के धर्मों की निंदा करता है।**

इस प्रकार यह **'अपनत्व'** ही—

तनाव
स्वार्थ
वैर-विरोध
वाद-विवाद
नफरत
तअस्सुब
लड़ाई
अत्याचार

का कारण बनती है।

धर्म या 'मज़हब' के विषय में हमारे —

ख्याल
निश्चय
श्रद्धा
कर्मकाण्ड
जिज्ञासा

हमारे **'भ्रम-भुलावे' में से उत्पन्न होते हैं,** तथा इन पर 'अहम्' या **'मैं-मेरी' का रंग चढ़ा होता है।**

इसलिए, **स्वयं धारण किये हुए धार्मिक ख्याल तथा निश्चय —**

अज्ञानता भरे
दिखावटी
देखा-देखी
मानसिक तसल्ली

वाले ही होते हैं।

परन्तु, यदि गौर से गहन विचार की जाये तब अनुभव होगा कि—

'ईश्वर' एक है
'हुकुम' एक है
'ज्योति' एक है
'प्रकाश' एक है
'शबद' एक है
'बाणी' एक है
'कुदरत' एक है

इसी **'एक के'** के **'स्वरूपों'** को गुरबाणी में, यूँ दर्शाया गया है—

एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई ।।
माइआ चित्र बचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई ।। 1।।
सभु गोबिंदु है सभु गोबिंदु है गोबिंद बिनु नही कोई ।।
सूतु एकु मणि सत सहंस जैसे ओति पोति प्रभु सोई ।।1।। रहाउ ।।
जल तरंग अरु फेन बुदबुदा जल ते भिंन न होई ।।
इहु परपंचु पारब्रहम की लीला बिचरत आन न होई ।।2।।
मिथिआ भरमु अरु सुपन मनोरथ सति पदारथु जानिआ ।।
सुक्रित मनसा गुर उपदेसी जागत ही मनु मानिआ ।।3।।
कहत नामदेउ हरि की रचना देखहु रिदै बीचारी ।।
घट घट अंतरि सरब निरंतरि **केवल एक मुरारी** ।।4।। (पृ. 485)

फरीदा खालकु खलक महि खलक वसै रब माहि ।।
मंदा किस नो आखीऐ जां तिसु बिनु कोई नाहि ।। (पृ. 1381)

देहरा मसीत सोई पूजा औ निवाज ओई
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाउ है ।।
देवता अदेव जॅछ गंधब्र तुरक हिंदू
निआरे निआरे देसन के भेस को प्रभाउ है ।।
एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान
खाक बाद आतस औ आब को रलाउ है ।।
अलह अभेख सोई पुरान औ कुरान ओई
एक ही सरूप सबै, एक ही बनाउ है ।। (अकाल उसतति पा :10)

कोऊ भइओ मुंडीआ संनिआसी कोऊ जोगी भइओ
कोई ब्रहमचारी कोऊ जतीअन मानबो ।।
हिंदू तुरक कोऊ राफजी इमामसाफी
मानस की जात सबै एकै पहचानबो ।।

(अकाल उसतति पा:10)

समस्त 'जीव' एक दिव्य 'ज्योति' से प्रकट हुए हैं। हमारा मूल स्त्रोत तथा **विरासत भी एक ही है।** इसलिए सब लोगों का **नैतिक तथा धार्मिक** कर्त्तव्य बनता है कि वे आपस में—

विरोधता	की	अपेक्षा	उदारता
वैर विरोध	की	अपेक्षा	मैत्री भाव
घृणा	की	अपेक्षा	प्यार
तअस्सुब	की	अपेक्षा	विशालता
झगड़ें	की	अपेक्षा	मिलाप
दिल तोड़ने	की	अपेक्षा	दिल – जोड़ें
विनाशकारी	की	अपेक्षा	सृजनात्मक

विचार भावना द्वारा मिलजुल कर बरताव करें ।

गुरबाणी हमारा इस विषय सम्बन्धी यूँ **मार्गदर्शन करती है —**

फरीदा जो तै मारनि मुकीआं तिन्हा न मारे घुंमि ।।
आपनड़ै घरि जाईऐ पैर तिन्हा दे चुंमि ।। (पृ. 1378)

फरीदा जे तू अकलि लतीफु काले लिखु न लेख ।।
आपनड़े गिरीवान महि सिरु नींवां करि देखु ।। (पृ. 1378)

फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ ।।
देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ ।। (पृ. 1382)

सभना मन माणिक ठाहणु मूलि मचांगवा ।।
जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ न ठाहे कही दा ।। (पृ. 1384)

अकाल पुरुष ने प्रत्येक जीव को —

रव्यालों
मनोभावों
इच्छाओं
धारणाओं
कर्मों
धर्मों

की **स्वतन्त्रता दी हुई है।**

इस प्रकार प्रत्येक जीव को **अपने निश्चय अनुसार 'धर्म' या 'मज़हब' धारण** करने तथा उसके नियमों अनुसार, जीवन व्यतीत करने का **भी 'अधिकार' है।**

इसलिए, एक दूसरे के 'धर्म' तथा 'सिंद्धान्तों' में —

दखल देने
विरोध करने
घृणा करने
तअस्सुब करने
मज़ाक उड़ाने
निरादर करने

का किसी को कोई अधिकार नहीं है।

परन्तु इस मानसिक स्वतन्त्रता की एक **जरूरी शर्त यह है** कि दूसरों के धार्मिक रव्यालों, धारणाओं व सिद्धान्तों के प्रति —

विशालता
सहनशीलता
उदारता
आदर भाव
मेलजोल तथा
प्रेम पूर्ण

व्यवहार होना चाहिए ।

हमें अपनी 'मज़हबी धारणाओं' तथा सिद्धान्तों को अन्य लोगों पर **जबरदस्ती 'ठोसने' का कोई अधिकार नहीं है।**

अपने धर्म के **निश्चयों को जबरदस्ती दूसरों पर ठोसने के भयानक 'परिणामों' की कहानियों से दुनिया का इतिहास भरा पड़ा है**, जिसका 'सहम' आज तक संसार के **वायुमंडल में प्रतीत होता है।**

विद्या के क्षेत्र में विज्ञान (science) तथा कला (arts) दो मुख्य भाग हैं। प्रत्येक विद्यार्थी को अधिकार है कि वह अपनी रुचि अनुसार, जो विषय पसन्द है, पढ़ने के लिए चुन ले। उसे यह भी अधिकार है कि जिस स्कूल या कालिज में दाखिल होना चाहता है, दाखिल हो जाये। यदि एक दूसरे के 'विषय' तथा 'स्कूलों' के बारे, **भेद&भाव या वैर&विरोध नहीं होता** तब धर्म&कर्म के निश्चय तथा साधनों पर भी कोई —

भेद&भाव

विरोधता

दखल

विरोध

घृणा

तअस्सुब

जबरदस्ती

अत्याचार

नहीं होना चाहिए !

प्रत्येक इंसान को अपने&अपने ख्यालों तथा निश्चय अनुसार जीवन व्यतीत करने का पूरा अधिकार है।

प्रकृति में 'भिन्नता', विलक्षणता तथा 'अनेकता' है। यह भिन्नता प्रकृति का अंग तथा शृंगार है। जिससे प्रकृति रंग&बिरंगे रूपों&आकारों में सजी हुई, 'ईश्वरीय जलवा' दिखा रही है। कितना सुन्दर है यह 'दुनी सुहावा बाग', जो ईश्वर के रचे **रंग&बिरंगे** फूलों से खिला दिखता है।

मेरै प्रभि साचै इकु खेलु रचाइआ ।।
कोइ न किस ही जेहा उपाइआ ।। (पृ. 1056)

नानक रचना प्रभि रची बहु बिधि अनिक प्रकार ।। (पृ. 275)

रंगी रंगी भाती करि करि
जिनसी माइआ जिनि उपाई ।। (पृ. 6)

नाना रूप नाना जा के रंग ।। नाना भेख करहि इक रंग ।।
नाना बिधि कीनो बिसथारु ।। प्रभु अबिनासी एकंकारु ।। (पृ. 284)
'एक मूरति अनेक दरसन कीन रूप अनेक ।।' (जापु पा. 10)

इसलिए, इन्सान के **ख्यालों तथा निश्चयों में भी 'विलक्षणता' होनी प्राकृतिक है।**

इस प्राकृतिक नियम अनुसार, एक दूसरे के धार्मिक ख्यालों, निश्चयों, सिद्धान्तों की—

निंदा करनी
निरादर करना
वाद विवाद करना
विरोध करना
लड़ाई करनी
झगड़े करना
अत्याचार करना

ही, **'मज़हबी तअस्सुब' है जो प्राकृतिक नियमों के उल्ट है !**

सारे धर्म तथा मज़हब, इन्सान को —

दया
क्षमा
नेकी
मैत्रीभाव
प्यार
मेलमिलाप
सेवा
कुरबानी

सिखलाने के लिए प्रचलित किये गये थे ।

परन्तु हम 'मज़हबी तअस्सुब' कारण, इन **दैवीय गुणों को भूल गये हैं तथा**

इन के ठीक 'विपरीत' —

वैर&विरोध

नफरत

तअस्सुब

लड़ाई

झगड़े

अत्याचार

की **तुच्छ भावना अथवा अवगुणों में गलतान होकर,** अन्य मज़हबों की —

मनाही

बदनामी

निंदा

उपेक्षा

विरोध

करने में ही, अपने धर्म की बढ़ाई, सेवा तथा उसे फैलाने का साधन समझे हुए हैं।

हम जब भी किसी के साथ —

ईर्ष्या&द्वेष

वैर&विरोध

तअस्सुब

नफरत

नुक्ताचीनी

निंदा

करते हैं, तब —

हमारे मन पर **घृणा का रंग चढ़ जाता है।**

घृणा का **प्रकटाव** हमारे मस्तक, आँखों तथा चेहरे पर होता है।

मन मलिन हो जाता है।

बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

'निर्णय&शक्ति' गँदली हो जाती है।

क्रोध की लपटें 'मच' उठती हैं।

यह **तअस्सुब तथा घृणा की किरणें दूसरे पर जाकर प्रभाव डालती हैं।**

तब घृणा तथा तअस्सुब की **अग्नि भड़क उठती है।**

दूसरे की **घृणा की किरणें 'पुनः' हमारे पास वापिस आती हैं।**

घृणा तथा तअस्सुब का **ज़हरीला चक्र निरंतर** (vicious circle) **चलता रहता है।**

इस प्रकार मज़हबी तअस्सुब तथा **घृणा की आग** (communal hatred) दिलों में, परिवारों में, मुहल्लों में, ग्रामों में, शहरों में, देशों में तथा विश्व भर में **बहुत तेजी से फैल कर, अत्यन्त जान॥माल की तबाही का कारण बनती हैं।**

यह **तअस्सुब तथा घृणा की अग्नि, जब 'मज़हबों' तथा धर्म स्थानों को 'लग' जाये, तो कयामत ही आ जाती है** !!!

इस प्रकार तथाकथित धर्मियों तथा धार्मिक ठेकेदारों ने 'स्वयं अंगीकृत' 'ग्लानि' से अपने ही 'धर्म', 'मज़हब' तथा 'दीन' को —

मलिन

भ्रष्ट

पाखण्ड

फोकट

बना दिया है। 'तअस्सुब की अग्नि' ने धार्मिक स्थानों तथा संस्थाओं में भी —

द्वैत

नफरत

ईर्ष्या

वैर॥विरोध

अहम्

मैं॥मेरी

स्वार्थ

हिंसा

के शोले जला रखे हैं। इन शोलों से धार्मिक नेता स्वयं भी जलते हैं तथा जो पास जाता है, उसे भी जला देते हैं।

हमारे धार्मिक तअस्सुब का एक स्थूल उदाहरण निजी अनुभव द्वारा प्रस्तुत है :—

सफर में कुछ सिक्ख संगति इकट्ठी बैठी थी। उन में गुरबाणी के किसी विषय पर विचार शुरू हो गयी। सभी गुरबाणी विचार सुन कर—

ईश्वरीय एकता

श्रद्धा भावना

बाणी के सत्कार

सिक्खी के प्रेम

गुरू के प्रेम

की एक **'प्रिम॥तार' में पिरोये गये,** तथा बाणी के रस का आनन्द लेते रहे।

परन्तु जब वक्ता ने बतलाया कि उस ने अमुक डेरे से यह ज्ञान सीखा है, तब बाकी सब के चेहरे से वह —

चाव

रस

संग

श्रद्धा

भावना

प्रेम

की 'झलक' उड़ गयी, तथा उनमें जो 'प्रेम की तार' बनी थी, वह तुरन्त टूट गयी, तथा उनकी 'श्रद्धा व चाव', 'रूखेपन' में बदल गया । इसका कारण यह था कि वे अपने॥अपने सम्प्रदाय को ही सर्वोत्तम समझते थे। दूसरे किसी सम्प्रदाय की बढ़ाई को वे सह न सके। वास्तव में वे —

'मूल छोडि डाली लगहि'

वाली **धार्मिक अवस्था में विचरण** कर रहे थे। जब उन्हें पता लगा कि 'वक्ता' किसी दूसरे फिरके से सम्बन्ध रखता है, तब वे **आपस में एक दूसरे के लिए पराये बन गये।**

इस प्रकार हम **दूसरे सम्प्रदाय तथा** धर्मों **के लिबास को देखते ही नफरत से भर जाते हैं** तथा उनकी **निंदा** करनी शुरू कर देते हैं।

इस प्रकार हमारे मन में **'तअस्सुब की अग्नि'** भभक उठती है।

जब धारै कोऊ बैरी मीतु ।।
तब लगु निहचलु नाही चीतु ।। (पृ. 278)

जिसु अंदरि तांति पराई होवै तिस दा कदे न होवी भला ।। (पृ. 308)

पर का बुरा न राखहु चीत ।।
तुम कउ दुखु नही भाई मीत ।। (पृ. 386)

छाडि विडाणी तांति मूड़े ।।
ईहा बसना राति मूड़े ।। (पृ. 889)

प्यार से प्यार उत्पन्न होता है तथा नफरत से नफरत उत्पन्न होती है।

"Love begets love, hate begets hate".

ये प्राकृतिक नियम अटल हैं —

जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु ।। (पृ. 134)

"As you sow so shall you reap."

इसलिए

'तअस्सुब' तथा 'नफरत' से —
'तअस्सुब' तथा 'नफरत'
उत्पन्न होना अनिवार्य है।

हमारे ख्याल — **दो धारी तलवार की भाँति हैं —**

अच्छे या बुरे (good or bad)
सृजनात्मक या विनाशकारी (constructive or destructive)
प्यार या नफरत (love or hate)
मेल मिलाप या तअस्सुब (co-existence or bigotry)
सहनशीलता या मुकाबला (conciliation or confrontation)

परन्तु हमने अपनी अज्ञानता में **'दैवीय' गुणों को भूल कर, दानवी अवगुण धारण कर लिए हैं** । इस प्रकार समस्त दुनिया में **तअस्सुब की ज्वाला उठ रही है तथा दुखी हुई जनता त्राहि!त्राहि कर रही है ।**

अत्यन्त दुख की बात तो यह है कि यह सब —

नफ़रत

ईर्ष्या

वैर विरोध

लड़ाई

झगड़े

धर्मयुद्ध

अकथनीय यातनाएँ

असह्य अत्याचार

'मज़हबी तअस्सुब' के जहरीले जोश में,'धर्म' के नाम पर किये जाते हैं ।

साधारण जनता तो भोली भाली ना समझ तथा 'पिछलग्गू' होती है, परन्तु इनके मानसिक जोश को,'मज़हबी तअस्सुब' की **ज्वाला से भड़काने वाले** —

अंधविशवासी धार्मिक नेता

स्वार्थी राजनैतिक लीडर

पक्षपाती पत्रकार

ही होते हैं, जो तअस्सुब की आग में, भोली भाली जनता को **धकेल कर, अपना स्वार्थ पूरा करते हैं** तथा 'स्वयं' पीछे हटकर तमाशा देखते हैं !!

आश्चर्य की बात है कि —

अनेक धर्म

धर्म प्रचार

उच्च विद्या

विज्ञान

आधुनिक सभ्यता

समाजवाद (socialism)

की अत्यन्त **उन्नति तथा प्रफुल्लता होते हुए भी, 'मज़हबी तअस्सुब' की ज्वाला — कम होने की अपेक्षा, बढ़ती जा रही है !!**

जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ ।। (पृ. 474)

जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना ।। (पृ. 433)

जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु ।। (पृ. 134)

मंदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा ।। (पृ. 470)

इस गहन तथा भयानक **अज्ञानता** को दूर करने लिए, तथा **'मज़हबी तअस्सुब' के घातक ज़हर या तपती 'लपटों' से बचने का** गुरबाणी में एक मात्र साधन —

'हरि नाम' ही बतलाया गया है ।

सरब धरम महि स्रेसट धरमु ।।
हरि को नामु जपि निरमल करमु ।। (पृ. 266)

मन मेरे गहु हरि नाम का ओला ।।
तुझै न लागै ताता झोला ।। (पृ. 179)

आतस दुनीआ खुनक नामु खुदाइआ ।। (पृ. 1291)

कलि ताती ठांडा हरि नाउ ।। (पृ. 288)

मिटि गए बैर भए सब रेन ।।
अंम्रित नामु साधसंगि लैन ।। (पृ. 295)

बिसरि गई सभ ताति पराई ।।
जब ते साधसंगति मोहि पाई ।। रहाउ।।
ना को बैरी नही बिगाना सगल संगि हम कउ बनि आई ।। (पृ. 1299)

संसार के समस्त धर्म यह दृढ़ करवाते हैं कि **'ईश्वर' एक है** और उसके संतों, भक्तों, महापुरुषों का **आदर-भाव तथा सेवा करनी आवश्यक है** तथा उसकी **सृष्टि प्रति मैत्री भाव से रहना चाहिए ।**

परन्तु **'मज़हबी तअस्सुब' के पागलपन में**

आपि न देहि चुल्लु भरि पानी ।।
तिह निंदहि जिह गंगा आनी ।। (पृ. 332)

अनुसार, महापुरुषों तथा निर्दोष लोगों की, सरे-आम, **अन्धे जोश में, निंदा की जाती है** । ऐसे निंदकों की **मनाही करने का भी किसी को साहस नहीं पड़ता !**

ऐसे तअस्सुबी दीवानों (religious fanatics) को गुरबाणी यूँ **प्रताड़ित करती है —**

संत की निंदा नानका
बहुरि बहुरि अवतार ।। (पृ. 279)

संतन दुख पाए ते दुखी ।।
सुख पाए साधुन के सुखी ।। (चौ. पा. 10)

जो जो तेरे भगत दुखाए ओहु ततकाल तुम मारा ।। (पृ. 681)

गुरमुख सिउ मनमुखु अड़ै डुबै हकि निआइ ।। (पृ. 148)

किसी धर्म या मज़हब के पैरोकारों को जब **'तअस्सुब' का रंग या 'पर्त' चढ़ जाये, तब —**

'धार्मिक गुणों' के
ठीक विपरीत,

मज़हबी तअस्सुब के 'ज़हर' द्वारा —

वैर
विरोध
नफ़रत
लड़ाई
ईर्ष्या
क्रोध
कट्टरता
द्वैत
अहंकार
जुल्म
जबरदस्ती

खून खराबा

अत्याचार

धर्म की निंदा

आदि **असुरी&अवगुण,** समस्त संसार में **प्रवेश कर जाते हैं,** जिससे संसार में **मायिकी अग्नि की ज्वाला, सब को अपनी लपेट में ले लेती है** । ऐसी स्थिति में, **कोई विरला,** सौभाग्यशाली ही, प्रभु कृपा के फलस्वरूप **मज़हबी तअस्सुब के ताप से बचता है —**

दावा अगनि बहुतु त्रिण जाले
कोई हरिआ बूटु रहिओ री ॥ (पृ. 384)

जब पड़ोसियों या परदेशियों के रहन&सहन, बोली तथा रीति&रिवाजों पर हमें **कोई आपत्ति** नहीं होती, तब उनके 'धर्म' तथा धार्मिक कर्म&क्रिया प्रति भी, हमारे अन्दर **'सहनशीलता'** तथा विशालता (tolerance)अवश्य होनी चाहिए ।

'सहनशीलता' धार्मिक गुण है, सहनशीलता के बिना, बाहरी मायिकी प्रभाव द्वारा, हमारा अहम् **जोश में आ जाता है तथा वैर&विरोध का कारण बनता है ।**

जब प्रत्येक इन्सान को अपनी&अपनी इच्छाओं, स्वाद तथा ख्यालों अनुसार खाने, पीने, पहनने, काम करने, आराम या मनोरंजन की स्वतन्त्रता है — तब प्रत्येक को अपने निश्चय अनुसार, **धर्म की 'मन्नत' तथा कमाई करने की भी पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए ।**

'धर्म', प्रत्येक 'मनुष्य' का **'निजी'** (private) अधिकार है । जिसमें एक&दूसरे को **दखल देने का कोई अधिकार नहीं** । यदि दूसरे के 'धर्म' में दखल देना **'अनुचित' है**, तब **'विरोध' करना या ईर्ष्या, द्वेष, वैर&विरोध करना 'आध्यात्मिक पाप' है ।**

परमात्मा हमारे समस्त&अवगुण देखता तथा जानता हुआ भी, हमें प्यार करता तथा सार&संभाल करता है ।

'दीन दइआल दइआ निधि दोखन देखत है पर देत न हारै ।।.....

रोजी ही राज बिलोकत राजक

रोख रूहान की रोजी न टोरै ।।' (तव प्रसादि सवयै पा. 10)

इसी प्रकार, धर्म भी, हमें **'देखकर अनदेखा'** तथा **'सुन के अनसुना' करने की प्रेरणा देता है ।**

फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ ।।

देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ ।। (पृ. 1382)

इसलिए लोगों के **अवगुण चितारने या निंदा/नफरत करनी, धर्म के उल्ट है।**

निंदा भली किसै की नाही मनमुख मुगध करंनि ।। (पृ. 755)

अणहोदा अजगरु भारु उठाए निंदकु अगनी माहि जलावै ।। (पृ. 373)

रोसु न काहू संग करहु आपन आपु बीचारि ।।
होइ निमाना जगि रहहु नानक नदरी पारि ।। (पृ. 259)

पर का बुरा न राखहु चीत ।।
तुम कउ दुखु नही भाई मीत ।। (पृ. 386)

खिंचोताणि विगुचीऐ एकसु सिउ लिव लाइ ।। (पृ. 756)

ववा वैरु न करीऐ काहू ।। घट घट अंतरि ब्रहम समाहू ।। (पृ. 259)

(क्रमश :.....)